Poonam Shodh Rachna (ISSN 2456-5563)
(A Multidisciplinary, Peer Reviewed And Refereed Journal)
Vol.3, Issue.IX, September 2024, Pc: PSR-2409006

गीतिकाव्य परम्परा से अभिसिचिंत लीलाशुक रचित कृष्णकर्णामृत गीतिकाव्य का परिशीलन !

श्वेता कुमारी शोधार्थी
संस्कृत विभाग मगध विश्वविद्यालय बोध गया (बिहार)

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य एक अत्यंत रोचक विद्या है। गीतिकाव्य का भण्डार समृद्ध है। संस्कृत की अन्य विधाओं की भाँति गीति का विकास भी वैदिक साहित्य से ही हुआ। ऋग्वेद के उषस् सुक्त में इसका बीज स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वहाँ से चलकर इस विधा की धारा आज भी अजस्र गति से प्रवाहित है।

संस्कृत–गीतिकाव्य की परम्परा सर्वप्रथम हम विचार करेंगे कि गीतिकाव्य का स्वरूप क्या है। यह 'गीति' शब्द आधुनिक साहित्य की देन है। इसकी निष्पत्ति 'गे' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से हुआ है। सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग 'गीत' अर्थ में ही किया जाता है। संगीत रत्नाकार में गीत के सर्वव्यापी प्रभाव एवं महत्व का उल्लेख करते हुए रत्नाकार कहते हैं– 'सामगीतिरतो ब्रह्मा।'(1) यहाँ गीति शब्द का प्रयोग गान अर्थ में हुआ है।

संस्कृत गीतिकाव्य परम्परा में लीलाशुक का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कीर्तिपताका सम्पूर्ण भारत में आज भी फहरा रही है। यह भी कहना उचित ही होगा कि वैष्णव भक्ति परम्परा में जो लोकप्रियता जयदेव को मिली वही लीलाशुक को भी प्राप्त हुई। इनके पद्यों का गाधन करते हुए भक्तगण अघातें नहीं। ऐसे कवि एवं भक्त का स्थितिकाल एवं जीवनवृत्त आज भी अनुमान का विषय ही बना हुआ है। संस्कृत के प्राचीन कवियों के साथ यही विडम्बना रही है कि उनके जीवनवृत्त का पूरा–पूरा एवं प्रमाणिक वर्णन नहीं मिलता। उन कवियों ने अपनी अहंकार शून्यता व्यक्त करने के लिए अपनी रचना अपना नाम, धाम, इतिवृत्त का कोई उल्लेख नहीं किया है। लीलाशुक ने भी अपनी कृष्णकर्णामृत में अपना परिचय नहीं दिया है।

बारहवीं शताब्दी और तेरहवीं शताब्दी के आरंभ तक के दो प्रतिनिधि काव्य हैं। गीतगोविन्द और कृष्णकर्णामृत। यथापूर्वोल्लिखित है कि गीतगोविन्द के प्रणेता है जयदेव और कृष्णकर्णामृत के रचयिता है लीलाशुक। दोनों कवि एक ही पथ के पथिक है और दोनों ही काव्य एक ही उद्देश्य की ओर ले चलने वाले है। दोनों काव्यों में अंतर है तो केवल रचनात्मक स्वरूप का। गीतगोविन्द में बारह सर्ग है और 24 प्रबंध है, फिर गीतों को जोड़ने वाले बीच–बीच में श्लोक (ध्रुवपद) है। हाँ, यह बात भी है कि प्रत्येक सर्ग में प्रबंधों की संख्या समान नहीं है। कृष्णाकर्णामृत में केवल छन्दोबद्ध श्लोक है, ताल या लय में बँधे गीत नहीं है। वह भी श्लोकों की संख्या 112 है।

अब देखना है कि गीतिकाव्य की विशेषताओं के अनुरूप कृष्णकर्णामृत की रचना है या नहीं। भाव–सान्द्रता गीतिकाव्य की पहली विशेषता बतलायी गयी है। कृष्णकर्णामृत का कवि आर्त्त है। प्रभुदर्शन के लिए उत्कंठित है। आर्तहृदय की करूणा ही कविता के रूप में प्रस्फुटित हुई है। कवि की यह करूणा काव्य में आद्योपान्त व्याप्त है। भाव इतना प्रबल है कि पद्यों की पढ़ने मात्र से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की आँखों से आँसू की बूँदें अनवरत गिर रही है। उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत है–

शिशिर कुरूते कदा नु नः
शिखिपिच्छाभरणः शिशुर्दशोः।

युगलं विगलन्मधुद्रव
स्मितमुद्रामृदुना मुखेन्दुना।।[28]

द्रवित होते हुए मधुद्रव के समान मधुर मुस्कान वाले अपने चन्द्रतुल्य मुखमण्डल से तथा मयूरपंख से भूषित शिरोभागवाले किशोर कृष्ण न जाने कब मेरे नेत्रों को शीतल करेंगे। भगवान शीघ्र ही कृपा करें और शीघ्रातिशीघ्र दर्शन दें तभी भक्तिकवि को संतोष होगा, तभी वह शांति पा सकेगा।

कवि अपनी आँखों से बालकृष्ण को देख रहा है, उन्हें स्पर्श करना चाह रहा है, पर नहीं छू पा रहा है। उसका दुर्भाग्य उसे इस लाभ से वंचित कर दे रहा है।

आम्यां विलोचनाभ्याम्बुरूह विलोचनं बालम्।
द्वाभ्यामपि परिरब्धुं दूरे मम हन्त देवसामग्री।।[29]

इस भावात्मकता के साथ–साथ यहाँ भावान्विति भी है। यद्यपि इस गीत में कोई कथासूत्र नहीं है, किन्तु कवि का उद्देश्य है भगवद्दर्शन। इसी सउद्देयय या उत्कण्ठा से समस्त पद्य पर परस्पर गुम्फित है। सर्वत्र इसी एक उद्देश्य का विस्तार है। साधना पथ में कई अवस्थायें आयी है। उन अवस्थाओं में कवि की अभिव्यक्ति में कुछ–कुछ परिवर्तन अवश्य आया है, लेकिन भक्ति की वह स्रोतस्विनी एक क्रम से ही प्रवाहित है। मेघदूत के पद्य कल्पना प्रधान है, किन्तु यक्ष की वेदना आद्योपान्त प्रवहमान होकर समस्त पद्यों को जोड़ी हुई है, उसी तरह कृष्णकर्णामृत में भावान्विति है।

कवि लीलाशुक के हृदयगत भाव सहज रूप में व्यक्त हुए है। सरल पद्यों के माध्यम से गहन एवं सूक्ष्म भाव व्यक्त हुए है। कहीं भी भाषाजन्य कृत्रिमता नहीं है और न भावबोध के लिए मानसिक आयाम ही करना पड़ा है। गीतिकाव्यकार भाषा के बंधन में या रूढ़ियों के बंधन में नहीं होता। लीलाशुक भी इन रूढ़ियों से मुक्त है। जयदेव ने तो गीत स्मिधा और उसके माध्यम से भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की लेकिन लीलाशुक ने उस पद्धति को नहीं अपनाया। इतना ही नहीं, छन्द के बंधन में भी नहीं पड़े। ऐसा नहीं कि करूणापूर्ण भावाभिव्यक्ति के लिए केवल शिखरिणी या मन्दाक्रान्ता जैसे छन्दों का ही प्रयोग किया। इन्होंने कई छन्दों का उपयोग किया है। वे छन्द भावों के निर्वहण के लिए भी उपयुक्त है। भगवान श्रीकृष्ण का मनोहर रूप भक्त कवि के मानस में सदा घूम रहा है। वह उनके दर्शन के लिए आतुर है व्यथित है–

अधीरबिम्बाधरविभ्रमेण
हर्षार्द्रवेणुस्वरसम्पदा च
अनेन केनापि मनोहरेण
हा हन्त हा हन्त मनो दुनोषि।।[30]

कवि ने अपनी मनोव्यथा को उपेन्द्रवज्रा छन्द के माध्यम से सहज रूप में व्यक्त कर दिया है।

संक्षिप्तता भी गीतिकाव्य की एक विशेषता है। कवि ने केवल अपने भक्ति–भाव को यहाँ व्यक्त किया है। यहाँ आराध्य देव भगवान कृष्ण के समग्र जीवन का भी वर्णन नहीं है। केवल किशोरावस्था में विद्यमान गोपवेश वाले कृष्ण का ही स्मरण किया गया है। केवल गोपवेश की ओर संकेत करने के लिए ही कवि ने मयूरपंख से विभूषित तथा वंशी बजाने वाला बार–बार कहा है भावसम्प्रेषण में संक्षिप्तता का ध्यान रखा गया है। कवि ने भक्ति के कई चरणों को केवल 112 पद्यों में ही पूरा किया है।

गयता गीतिकाव्य का अनिवार्य धर्म बतलाया गया है। छन्दोबद्धरचना होने से कृष्ण कर्णामृत के पद्यों की जेयता सहज सिद्ध है। यह बात अवश्य है कि जयदेव के गीतों के राग और ताल बतला दिये गये हैं परन्तु इस काव्य में मुक्त पद्य होने के कारण ऐसा नहीं किया गया है।

कृष्णकर्णामृत की भाषा अति सरल है। कवि ने कहीं भी शाब्दी चमत्कार दिखाने की कोशिश नहीं की है यदि किसी श्लोक के पदबंध समासिकता के कारण कुछ जटिल हो गये है तो ऐसा नहीं कि उसका अर्थबोध कठिन है, श्लोक दुरूह हो गया है। कहीं भी अनावश्यक अलंकारों का प्रयोग नहीं किया गया है। श्लेष और चित्रबंधात्मकता से तो यह काव्य सर्वथा दूर है। यदि कहीं श्लेष है भी तो शाब्दी और वह भी बहुत कम। वक्रोक्ति का भी अभाव है। कवि ने प्रत्येक शब्द को समझ–बूझकर प्रयुक्त किया है।

कोई पद अनावश्यक या चमत्काररहित नहीं है। परिणामतः किसी भी पद्य का पढ़ते ही सहज रसानुभूति हो जाती है। भक्ति भावना की तरलता हृत्तल में पहुंचकर अच्याचित कर देती है।

भाषागत सरलता का एक उदाहरण है–

निर्बद्धमूर्धा जलिरेष याचे
नीरन्ध्रदैन्योन्नतिमुक्तकण्ठम्।
दयाम्बुधे देव भवत्कटाक्ष
दाक्षिण्यलेशेन सकृन्निषिञ्च।।[31]

अर्थात् 'मैं हाथ जोड़कर सिर से लगाकर निरन्तर बढ़ते हुए दैन्यभाव से उन्मुक्त कण्ठ से याचना करता हूँ– हैं दयानिध! देव! आप अपने चंचल चितवन रूपी दया के लेश मात्र से एकबार अभिसिंचन कर दें।'

कोई भी आर्त्त व्यक्ति बड़ा ही चातुर होकर इसी तरह हाथ जोड़कर, सिर झुकाकार, हाथों को माथे से लगाकर दैन्य भाव से निवेदन करता है। भगवान् के लिए किये गये संबोधन 'दयाम्बुधे' और 'देव' भवत हृदय के आर्त्ताधिक्य को व्यंजित करते है। इस पद्य में कोई भी अप्रचलित दुर्बोध शब्द प्रयुक्त नहीं है। कोई व्याकरणिक या दार्शनिक गुल्थी नहीं है, यमक और श्लेष जैसे अलंकार भी नहीं है।

कवि ने प्रत्येक पद का सार्थक प्रचोग किया है। एक पद्य द्रष्टव्य है–

त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवैहि।
मच्चापलं च मम वा तव वाधिगम्यम्।
तत्किं करोमि विरलं मुरलीविलासि
मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम्।।[32]

यहाँ 'त्रिभुवन' पद का सामान्य अर्थ है तीनों लोक। किन्तु कवि ने इस पद से कृष्ण की तीनों क्रीड़ा स्थलियों को भी संकेतित किया है। कृष्णवल्लभा टीकाकार लिखते हैं–

''...त्वच्छैशवं तव चापल्यं त्रिभुवनाद् भुतं त्रिभुवनेष्वद्भुतम्।
त्रिभुवनप्रकटस्वरूपेषु तादृशकैशोरमाधुरीचमत्कारा भावात्।...
त्रिभु त्रिषु श्रीमथुरा–गोकुल–वृन्दावनेषु भूः सन्ता यस्य तत्।''

स्पष्ट है कि गीतिकाव्य की समस्त विशेषतायें 'कृष्णकर्णामृत' में विद्यमान है। इसे मुक्तक काव्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इसके समस्त पद्य भक्ति भावना के विकास के साथ–साथ विकास क्रम में सजे हुए है। इसके पद्य भर्तृहरि के पद्यों की तरह अपने आप में स्वतंत्र नहीं है। निर्विवाद रूप से कृष्णकर्णामृत को गीतिकाव्य की विद्या मानी जायेगी।

आलोच्य गीतिकाव्य–द्वय पर भक्ति परम्परा का प्रभाव :

वास्तव में संस्कृत साहित्य में भक्तिपरम्परा का आविर्भाव श्रीमद्भावगत पुराण के बाद हुआ। इसमें श्रीकृष्ण पूर्ण भगवान है, इनकी बाल–लीलायें चमत्कारपूर्ण है। इनकी छोटी काया में विस्तृत ब्रह्माण्ड का दर्शन होता है। भागवत में महाभारत से लेकर पुराणकाल तक कृष्णचरित में समाविष्ट सभी तत्वों का समन्वित रूप उपलब्ध होता है। यहाँ आकर श्रीकृष्ण को अन्य सभी अवतारों की अपेक्षा अधिक महत्व मिलता है और वे भगवान के रूप में मान लिये जाते हैं।

एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम्।

भगवान श्रीकृष्ण विषयकसर्वाधिक कथायें हरिवंश पुराण में है। इस पुराण में श्रीकृष्ण को गोपियों के साथ जोड़ दिया गया है। विष्णुपर्व के 128 अध्यायों में कृष्ण जीवन की सम्पूर्ण कथा दी यी है। यहाँ उनके सौन्दर्य का वर्णन है। पूतना–वध, शकटासुरवध, यमलार्जुननपतन माखन चोरी, गोवर्धन धारण आदि लीलायें यहाँ विस्तारपूर्वक दी गयी है। ये समस्त लीलायें भागवत में भी है, किन्तु भक्ति भावना से पूर्णतः सरावोर। भक्त हृदय उन लीलाओं को पढ़कर या सुनकर आनन्दित हो उठता है।

श्रीमद्भागवत की इस भक्तिधारा का विकास आगे चलकर कई रूपों में हुआ। संस्कृत–गीतिकाव्य में साहित्य तत्वों का प्रधान्य है, चाहे वह कालिदास, अमरूक या भर्तृहरि की ही काव्य क्यों न हो। यहाँ

भक्ति को स्थान नहीं दिया गया है। गीत साहित्य के भक्ति भावना का उन्मेष जयदेव से ही होता है। इन्होंने श्रीकृष्ण की भगवता स्थापित करने के लिए दशावतार का सर्वप्रथम वर्णन किया है। एक ही पूर्ण ईश्वर विष्णुअनेक रूपों में अवतरित हुए है। मत्स्य, कच्छण, वराह, नृसिंह, परशुराम आदि की तरह श्रीकृष्ण भी विष्णु के ही अवतार है। इन्होंने राधा–कृष्ण की जिस प्रणय–लीला का वर्णन किया है वह श्रृंगारिक होता हुआ भी भक्ति भावना से ओतप्रोत है। प्रत्येक गीत के अंत में महिमा गान है। वह महिमा गान भक्त हृदय का सान्द्रभाव है। उन पद्यों में कवि पूर्णरूपेण समर्पण भाव प्रस्तुत करता है। इनमें चाहे तो उसने कृष्ण की जय–जयकार की है अथवा भक्त सहृदयों से उन गीतियों में श्रीकृष्ण की भगवल्लीला पढ़ने को कहा है या अपने परम प्रभु से भक्तों या पूरे जगत की रक्षा करने, कल्याण करने का विनीत निवेदन किया है।

गीतगोविन्द ने अपने उपास्य के प्रति पूर्ण समर्पण या शरणागत का भाव देखकर परवर्ती गीतिकाव्यकारों ने अपने–अपने आराध्य देवों की महिमा गायी। आगे चलकर यह गीतगोविन्द स्त्रोत साहित्य का उपजीव्य सा बन गया। गीतिकाव्य में जो साहित्यिक रसमयतार्थी वह भी स्त्रोतों में विशुद्ध भक्ति में परिणत हो गयी। वे सभी स्त्रोत भक्तों के लिए प्रभु की स्तुति के साधन बने एवं अन्तःकरण के भक्ति भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम हुए। बारहवीं शताब्दी में लीलाशुक ने जिनका अपर नाम विल्बमंगल था, कृष्णकर्णामृत की रचना की। इसमें 112 पद्य है। इन पद्यों में निहित भावों का तीव्र आवेग गीतगोविन्द की भावसान्द्रता के साथ मेल रखता है। 14वीं शताब्दी में जगद्धर ने स्तुतिकुसमांजलि की रचना की। इसमें भगवान शंकर की महिमा का गान अत्यंत सरस पदावलियों में किया गया। इसमें 38 स्त्रोत है। इसमें भक्तहृदय की अन्तर्भावना का अति मधुर पदावली में चित्रण किया गया है। इसमें भी भक्तिभावना अपनी पराकाष्ठा पर है। इसी प्रकार अनेक स्त्रोत काव्यों पर गीतगोविन्द का प्रभाव पड़ा, भले ही स्थूल साम्यन है, लेकिन उनकी प्रेरणा भूमि में गीतगोविन्द अवश्य ही है।

संस्कृत–साहित्य में भक्तिकाव्य की एक दीर्घ परम्परा है। इसके अन्तर्गत स्त्रोत काव्यों की गणना की जाती है। इसमें प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय के कवियों ने अपने अपने इष्ट देवों की स्तुति की है। ऐसे कवियों में पुष्पदन्त (शिवमहिम्न स्त्रोत), मयूरभट्ट (सूर्यशतक), बाणभट्ट (चण्डीशतक), शंकराचार्य (सौन्दर्यलहरी, भजगोविन्दम्) जैसे भक्त एवं विद्वान कवि सम्मिलित है। वैष्णव भक्तों में कुलशेखर (कुन्दमाला), यामुनाचार (आलवन्दार स्त्रोत), वेदान्तदेशिक (अच्युतशतक), पं०राज जगन्नाथ (लहरीकाव्य), आदि शैव भक्तों में जगद्धर (स्तुतिकुसुमंजलि), अवतार (ईश्वरशतक) तथा शाक्त सम्प्रदाय के कवियों में महर्षि दुर्वासा (आर्या–द्विशती, त्रिपुरसुन्दरी महिन्नस्त्रोत), शंकराचार्य (कनकधारा स्तव), आनन्दवर्धन देवीशतक इत्यादि के नाम स्मरणीय है। समन्तभद्र, विद्यानन्द, सिद्धसेन दिवाकर, देवनन्दिपूज्यपाद, मातंग आचार्य आदि जैन सम्प्रदाय के स्त्रोत काव्यकार है।

लीलाशुक की रचना कृष्णकर्णामृत के विषय में पं० बलदेव उपाध्याय लिखते हैं– ''कृष्ण की बाल–लीला पर आधारित यह गीतिकाव्य नितान्त रसपेशल, स्निग्ध तथा कोमलकान्त है। कवि उन्हें अपने प्रियतम रूप में उपास्य बतलाकर माधुर्य भक्ति का उज्जवल दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।[(33)] यहाँ उपाध्याय जी ने कृष्णकर्णामृत की गीतिकाव्य के अन्तर्गत रखते हुए पूर्ण भक्ति काव्य के रूप में स्थापित किया है।

बाबूराम त्रिपाठी ने कृष्णकर्णामृत को भक्तिकाल बतलाया है– ''कृष्णकर्णामृत को 'कृष्णलीलामृत' भी कहा जाता है। यद्यपि इस स्त्रोत में कृष्ण स्तुति परक 112 पद्य है, फिर भी अपनी सरस मधुर पदावली के कारण यह काव्य अधिक लोकप्रिय हुआ, सुभाषित संग्रहों में इससे अनेक पद्य उद्धत किये गये है।[(34)]

बिण्टरनित्स ने लिखा है– ''ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्णकर्णामृत नामक 110 पद्यों का एक कृष्ण स्त्रोत विल्वमंगल ने बनाया। इस स्त्रोत का भारत में बड़ा सम्मान है। युवकगण इस काव्य को प्रत्यह गाते है और इसके कुछ पद्य नृत्य के लिए उपयुक्त है।[(35)]

डॉ० रामकुमार वर्मा को उद्धत करते हुए डॉ० शेर सिंह विष्ट ने भी इस काव्य को भक्ति काव्य के अन्तर्गत ही रखा है। ''बारहवीं शती में राधा–कृष्ण की लीलाओं का पूर्ण विकास विल्वमंगल ठाकुर के कृष्णकर्णामृत नामक ग्रंथ में दिखलायी देता है। चैतन्य महाप्रभु इस ग्रंथ को दक्षिण से ले आये थे। इसमें

कृष्ण विषयक अनेक लीलाओं का वर्णन है।[36]

निर्विवाद सिद्ध है कि गीतगोविन्द और कृष्णकर्णामृत दोनों ही भक्ति गीतिकाव्य है। दोनों का वर्ण्य विषय है भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान और आत्मनिवेदन दोनों ही काव्यों पर भारतीय साहित्य की भक्ति–परम्परा का प्रभाव है। इनकी मूल प्रेरणाभूमि श्रीमद्भागवत ही कहा जायेगा।

संदर्भ–सूची :

1. संस्कृत रत्नाकर, आनन्दाश्रम, पृ० 6
2. नाट्य शास्त्र 29, 77, 80
3. शब्द कल्यद्रुम–332, पृ० 80
4. संगीतरत्नाकर, खण्ड–1, पृ० 280
5. इन्साइक्लोपीडिया विटानिका, वोल्यूम–18, पृ० 107
6. द लिरिक, पृ० 9
7. टिपिकल फॉर्मस् ऑवइंजलिश लिटरेचर, पृ० 39
8. इन्साइक्लोपीडिया विटानिका, लिरिक
9. हिन्दी गीतिकाल, ले० ओमप्रकाश अग्रवाल में उद्धृत
10. वही
11. विश्वभारती, क्वार्टरली, मई 1935
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए०बी० कोथ, अनु० मंगल, देवशाली, पृ० 239–240

________****________